प्रस्तावना

गीता की योजना महाभारत में की गई है। महाभारत का युद्ध जब अवश्यम्भावी हो गया तब वेद व्यास जी ने धृतराष्ट्र से कहा, 'यदि तुम युद्ध देखना चाहते हो तो मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि दे सकता हूँ। तुम यहीं बैठे-बैठे सब कुछ देख सकोगे।' धृतराष्ट्र जन्म से अन्धे थे। अब अपने कुल का संहार देखने के लिए दृष्टि नहीं पाना चाहते थे किन्तु युद्ध के समाचार जानने की उनकी उत्कंठा थी। अतः व्यास जी ने संजय जी को दिव्य दृष्टि दी कि वह सबके मन की अवस्था तक देख सके और युद्ध का हाल सुना सके।

दस दिन तक संजय युद्ध क्षेत्र में ही थे। पितामह भीष्म के गिरने के बाद उन्होंने आकर धृतराष्ट्र को समाचार सुनाया। धृतराष्ट्र बहुत दुःखी हुए और संजय को सारा युद्ध वृतान्त सुनाने को कहा। भीष्म पर्व के चौबीसवें अध्याय तक संजय ने युद्ध संबंधी बातें उन्हें सुनाई। पच्चीसवें अध्याय में गीता की योजना है।

गीता को प्राचीन काल से ही उपनिषद् की पदवी मिली हुई है। गीता उपनिषदों की उपनिषद् है। सभी उपनिषदों को दुहकर गीता रूपी दूध भगवान ने अर्जुन के निमित्त से संसार को दिया है। गीता में नया कुछ भी नहीं। कहीं-कहीं तो उपनिषदों की पंक्तियां ज्यों की त्यों प्रयुक्त कर ली गई है। किन्तु गीता और उपनिषदों में सबसे बड़ा अन्तर है पृष्ठ भूमि का। उपनिषद् भी गुरु-शिष्य संवाद के रूप में ही हैं लेकिन वे सब किसी आश्रम के शान्त पवित्र वातावरण में एकाग्रचित्त साधक के सम्मुख किसी त्यागी तपस्वी द्वारा कहे गये हैं। इसके विपरीत गीता का वातावरण है युद्ध भूमि। अट्ठारह अक्षौहिणी सेना एक दूसरे को मार डालने को आतुर, गज, अश्व की चिंघाड़, चीत्कार तथा युद्ध वाद्यों की आवाज, धनुषों की टंकार की पृष्ठभूमि में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं। श्रीकृष्ण स्वयं कोई संन्यासी तपस्वी नहीं, न ही अर्जुन कोई साधक या ब्रह्मचारी है। दोनों ही संसारी हैं। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं परमात्म रूप और अर्जुन एक क्षत्रिय, जिसे बचपन से युद्ध शास्त्र की शिक्षा मिली थी जिसका गांडीव हर वक्त क्षात्र धर्म के पालन के लिए बेताब रहता था। इस उपदेश के वक्त उसका मन शान्त भी नहीं, उसका शरीर कांप रहा है, त्वचा जल रही है,

मुंह सूख रहा है, वह खड़ा रहने में असमर्थ है। ऐसी पृष्ठभूमि और शिष्य की ऐसी अवस्था में तत्वज्ञान का उपदेश! यही गीता की विशेषता है।

अर्जुन एक राजपुत्र था। गुरुकुल में उसने वेद उपनिषद की शिक्षा भी पाई थी किन्तु यह ज्ञान व्यवहार के समय उसके काम नहीं आया। वस्तुतः धर्म का तात्विक स्वरूप तो एक ही होता है क्योंकि सत्य कभी बदलता नहीं किन्तु उसके व्यावहारिक स्वरूप को देश, काल, परिस्थिति के अनुसार थोड़ा-बहुत बदलना ही होता है। गीता में आत्म उन्नति के सिद्धांत वे ही बताये गये हैं जो उपनिषद् में हैं किन्तु इसके साथ उन्हें जीवन के संघर्षों और तनावों के बीच व्यवहार में लाने के उपाय भी बताए गये हैं। इसी के लिए युद्ध की पृष्ठभूमि तथा अस्थिर, अशान्त, तनाव और मोहग्रस्त शिष्य की योजना की गई है। गीता की यह शैली अनुपम है और इसकी बातें बहुत आसानी से मस्तिष्क के रास्ते हृदय में प्रवेश कर जाती हैं। अतः गीता का गौरव इस बात में नहीं कि वह **क्या** कहती है, बल्कि इस बात में है कि वह **कैसे** कहती है। गीता की नाटकीय पृष्ठभूमि के द्वारा वेद व्यास जी ने धर्म को वन और हिमालय से निकाल कर मानव के दैनिक जीवन में प्रतिष्ठित किया ताकि साधारण मनुष्य उसका लाभ उठाकर अपने जीवन को संतुलित और सफल बना सके। यदि धर्म को उपयोगी होना है तो इसे बाजार में, घर में, संसद भवन में तथा मतदान केन्द्र में रहना होगा।

कोई भी धर्म ग्रंथ जब बहुत प्राचीन हो जाता है तो उसका स्वरूप प्रगतिशील समाज के अनुरूप नहीं रह जाता, बल्कि होता यह है कि कालान्तर में उसकी व्याख्याएं इतनी तोड़-मरोड़ दी जाती हैं कि वह विकृत हो जाता है, लोग उसका आदर क्या, अनादर करने लगते हैं, मखौल उड़ाने लगते हैं या मानने से इंकार कर देते हैं। अर्जुन ने भी वेद उपनिषदों का अध्ययन तो किया था किन्तु उनकी अनेक मान्यताएं रूढ़िवादी हो गई थीं। उदाहरण के लिए धार्मिक कृत्य का अर्थ यज्ञ आदि अनुष्ठान मात्र समझे जाते थे, त्याग और संन्यास का अर्थ संसार को छोड़ हिमालय में बस जाना माना जाता था, जाति का आधार जन्म हो गया था जिसके कारण सूत पुत्र राजपुत्रों के साथ प्रतियोगिता नहीं कर सकता था भले ही उसमें समस्त क्षत्रियोचित गुण साफ-साफ दिखाई पड़ते हों। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने इन खतरनाक रूढ़िवादी मान्यताओं पर निर्मम कुठाराघात किया है और अर्जुन की चेतना को बिल्कुल झकझोर डाला है।

*****

गीता का प्रयोजन

स्वधर्म विरोधी मोह का नाश

यों तो गीता में परमात्मा की प्राप्ति तथा देहभाव से मुक्ति के लिए ज्ञान, भक्ति, कर्म योग की विस्तृत विवेचना की गई है किन्तु इन सबका वास्तविक उद्देश्य क्या है–

अर्जुन जब किंकर्तव्यविमूढ़ होकर भगवान की शरण में जाता है, तब कहता है, 'मोह के कारण मेरा विवेक नष्ट हो गया है', और गीता का सम्पूर्ण उपदेश सुनने के पश्चात् कहता है, 'भगवन्, मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे स्वधर्म का भान हो गया।' इससे स्पष्ट है कि मोह ही स्वधर्म का बाधक है। मोह के कारण व्यक्ति समझ नहीं पाता कि अमुक परिस्थिति में उसे क्या करना चाहिए। गीता का उद्देश्य इसी मोह, इसी आसक्ति को दूर कर स्वधर्म का दीपक दिखलाना है। भगवान श्रीकृष्ण को अर्जुन अति प्रिय था। भगवान स्वयं सर्व समर्थ थे। वे चाहते तो चुटकी में अर्जुन के सारे दुःख दूर कर सकते थे, उसकी सारी समस्याएं सुलझा सकते थे। किन्तु भगवान ऐसा न कर उसकी बुद्धि को इस प्रकार परिष्कृत कर देते हैं कि वह समस्या को बिल्कुल दूसरे ही दृष्टिकोण से देखे। और यही होता है। जैसे ही अर्जुन अपने मोह रूपी चश्मे को अलग रख संसार का अवलोकन करता है उसे हर वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति का सही–सही रूप दिखाई पड़ता है। तब कोई समस्या ही नहीं रह जाती। वास्तव में स्थाई हल यही है। यदि हम किसी कार्य को करने में असमर्थ हैं तो दूसरा यदि प्रेमवश एक बार हमारा काम कर भी दे तो उससे हमारी समस्या स्थाई रूप से नहीं मिटेगी। हमें तो अपने अन्दर सामर्थ्य पैदा करनी होगी तभी हम हर क्षण जीवन की चुनौतियों का मुकाबला सफलतापूर्वक कर पायेंगे।

किसी भी प्रश्न के हल के लिए पहले उसके सही–सही आंकड़े मिलने चाहिए। मनुष्य का व्यक्तित्व एक कंप्यूटर से अनेक गुणा जटिल है। वह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा परिस्थिति को देखता–सुनता है। ये ही उसके आंकड़े हैं। इसके बाद मन इन सब आंकड़ों को एकत्र कर उसे बुद्धि के सामने प्रस्तुत करता है ताकि वह निर्णय ले सके कि अमुक परिस्थिति में उसे क्या करना चाहिए। यहीं सब गड़बड़ हो जाती है। मन भावनाओं और संवेदनाओं का केंद्र है इसलिए मन से होकर गुजरते

समय वे आंकड़े इसके विभिन्न रंगों में रंगे जाते हैं, अत: बुद्धि के सामने वे अपने सही रूप में प्रस्तुत नहीं हो पाते। काम, लोभ, मोह और भ्रम से रंगे इन गलत आंकड़ों के कारण या तो बुद्धि कुछ निर्णय ले नहीं पाती या गलत निर्णय ले बैठती है। इसलिए या तो अर्जुन समझता है कि वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है या वह युद्ध क्षेत्र से दूर जाकर संन्यास ले लेना चाहता है। इस प्रकार जीवन में पग-पग पर निर्णय लेने की आवश्यकता आती है, जीवन की सफलता सही निर्णय क्षमता पर ही निर्भर करती है और निर्णय तभी सही होगा, जब मन मोह से ग्रस्त न हो। इसलिए गीता का सीधा उद्देश्य मोह पर ही गदा प्रहार है।

गीता की टेक - युध्यस्व

गीता मनुष्य को संसार में रहना सिखाती है। संसार मोहरूप है किन्तु इसी मोहरूप के बीच हमें अपने को मोह से बचाते हुए रहना है। गीता के माध्यम से भगवान यही सीख हमें भी देते हैं। तभी तो वे बारम्बार अर्जुन को युद्ध करने की प्रेरणा देते हैं। वे एक ओर उसे आत्मा का उपदेश देंगे और फिर कहेंगे 'युध्यस्व'। जिस प्रकार गीत की टेक होती है, हर तीन-चार लाईन के बाद फिर वही दोहराई जाती है उसी प्रकार गीता की टेक युध्यस्व है।

हम भी अर्जुन की भांति युद्ध में रत हैं। हमारे भीतर शुभ तथा अशुभ प्रवृत्तियों का महाभारत निरंतर चल रहा है। एक ओर आत्मा की आवाज दूसरी ओर शैतान का बिगुल। आत्मा की आवाज हमें बुराई की राह पर जाने से रोकती है किन्तु यह बहुधा क्षीण होती है। शैतान का बिगुल हमारा आह्वान करता है- क्या अच्छाई की रट लगा रखी है, दुनिया में अच्छाई है भी कहीं? यदि आगे बढ़ना है तो दूसरों को छलो, ठगो। किसी भी प्रकार अपना उल्लू सीधा करो, और हम दोनों आवाजों के बीच अर्जुन की भांति विभ्रमित खड़े हो जाते हैं। एक ओर संसार के सुनहले सपने, तड़क-भड़क का जीवन, दूसरी ओर त्याग और संयम का जीवन, मन और इन्द्रियों का स्वामित्व। दोनों का मंथन चलने लगता है और ऐसे समय भगवान उद्घोष करते हैं - हे अर्जुन, तू सब समय निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध कर। इस प्रकार मुझमें अर्पित किए हुए मन और बुद्धि से युक्त हुआ नि:संदेह तू मुझी को प्राप्त होगा।

*****